Edit with WPS Office

Edit with WPS Office

आदिकाल (वीरगाथा काल)

(संवत् 1050-1375 वि०)

Edit with WPS Office

Edit with WPS Office

आदिकाल

सामान्य परिचय

साहित्य सामाजिक मस्तिष्क और हृदय की अनुकृति है । यह किसी युग का अनुगामी ही नहीं होता अपितु विधायक और संचालक भी होता है । अतः हिन्दी साहित्य के 'आदिकाल' का प्रारम्भ कब से माना जाय, यह बड़ा ही विवादग्रस्त विषय है । इस काल के प्रारम्भिक समय को लेकर विद्वानों में मतभेद है । राहुल सांस्कृत्यायन, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' तथा मिश्रबन्धु 'विनोद' आदि विद्वानों ने आदिकाल का प्रारम्भ सातवीं शताब्दी से माना है । इसी प्रकार डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस काल का प्रारम्भ दसवीं शताब्दी से माना है । इसके विपरीत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल का समय संवत् 1050 से 1375 तक माना है । आचार्य शुक्ल द्वारा निर्धारित समय-सीमा से प्रायः सभी विद्वान सहमत हैं । यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह निर्धारण समीचीन भी प्रतीत होता है ।

आदिकाल के नामकरण के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है । उन्होंने तत्कालीन समय में उपलब्ध साहित्य एवं उनकी प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर इस काल को विभिन्न नामों से अभिहित किया है । सर्वप्रथम मिश्र बन्धुओं ने इसे 'आदिकाल' कहकर पुकारा है, किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वीरगाथाओं की प्रधानता को ध्यान में रखकर इसे 'वीरगाथा काल' कहना अधिक उपयुक्त समझा । किन्तु यहाँ पर विचारणीय तथ्य यह है कि इस काल में दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं । प्रथम प्रकार की रचनाएँ अपभ्रंश की हैं और दूसरे प्रकार की रचनाएँ देशज भाषा की है । विजयपाल रासो, कीर्तिलता, 'हम्मीर रासो' और 'कीर्ति पताका' अपभ्रंश साहित्य की मात्र चार रचनाएँ हैं जबकि जयमयंक, जस चन्द्रिका, परमाल रासो, खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचन्द्र प्रकाश, खुसरो की पहेलियाँ और विद्यापति पदावली आदि आठ देशज भाषा की साहित्यिक रचनाएँ मानी गयी हैं । आचार्य शुक्ल की मान्यता है कि इनमें अन्तिम दो तथा 'बीसलदेव रासो' को छोड़कर शेष सभी वीरगाथात्मक काव्य हैं । अतः इन बारह रचनाओं के आधार पर इस काल का नाम 'वीरगाथा काल' होना चाहिए । लेकिन शुक्ल जी ने जिन रचनाओं को आधार मानकर इस काल को 'वीरगाथा काल' के नाम से अभिहित किया है, उन कृतियों की प्रामाणिकता के अभाव में यह नामकरण स्वतः उचित-अनुचित के द्वंद्व की परिधि में आ जाता है ।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने इस काल का नाम 'चारण काल' रखा है । क्योंकि वीरगाथाओं के रचयिता राज्याश्रित चारण थे । डॉ० वर्मा की इस मान्यता के संबंध में डॉ० गणपति नाथ गुप्त का कथन है कि — "इस युग के साहित्य के रचयिता चारण नहीं अपितु भाट थे ।" चन्द, केदार और जगनिक भाट थे । चारण भाटों से भिन्न हैं । इस युग के अन्तर्गत उन्होंने जिन रचनाओं को स्थान दिया है उनमें से अधिकांश सोलहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक रचित हैं और उनमें किसी का भी रचयिता कोई चारण नहीं है । इसके साथ ही रासो ग्रंथों की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है । अतएव इसे चारण काल कहना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता ।

Edit with WPS Office

इसी प्रकार राहुल सांस्कृत्यायन द्वारा प्रतिपादित नाम 'सिद्ध सामन्त काल' भी समीचीन नहीं प्रतीत होता क्योंकि इस काल में सिद्धों तथा जैन कवियों द्वारा रचित साहित्य छूट जाता है। इस काल को अपभ्रंश काल भी कहना उचित नहीं है क्योंकि इस समय की सम्पूर्ण रचनाएँ अपभ्रंश में ही नहीं लिखी गयी है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी नामों में कुछ-न-कुछ कमी रह गयी है। अन्य उपयुक्त नाम के अभाव में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'आदिकाल' नाम से अभिहित किया। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इसका यही नाम उचित प्रतीत होता है क्योंकि इसके अन्तर्गत तत्कालीन सभी प्रकार के साहित्यों को रखा जा सकता है। अतः 'आदिकाल' नाम रखना ही

Edit with WPS Office

आदिकाल की परिस्थितियाँ

काल की अविच्छिन्न धारा के समान साहित्यिक परम्पराएँ और प्रवृत्तियाँ निरन्तर गतिशील रहा करती हैं। समाज की परिस्थितियों में पलते हुए व्यक्ति उसके गायक और स्रष्टा होते है। साहित्यकार सामाजिक प्राणी होता है। इसलिए उसका हृदय और उसकी रागात्मक वृत्ति साधारण मानवों से अधिक उर्वर और संवेदनशील होती है। आदिकालीन साहित्य के विशाल-प्रासाद का निर्माण भी तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव से हुआ। इस काल की प्रमुख परिस्थितियाँ निम्नलिखित हैं —

1. राजनीतिक परिस्थिति — आदिकाल की राजनीतिक कहानी राजपूती शासन के उत्थान और पतन की तथा मुस्लिम शासन की स्थापना की कहानी है। संवत् 707 में सम्राट हर्षवर्द्धन की मृत्यु के उपरान्त देश की केन्द्रीय शक्ति कमजोर हो गयी। देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। राजाओं में अपने राज्य विस्तार की होड़ लग गयी। उनके आपसी द्वेष एवं संघर्ष से भारत की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक एकता नष्ट हो गयी। दिल्ली में तोमर, कन्नौज में राठौर, अजमेर में चौहान, धार में चालुक्य और बुन्देलखण्ड में बुन्देल राज्य स्थापित हो गये। ये सभी राज्य आपस में संघर्षरत रहने लगे। इनमें से किसी को देश की सुरक्षा और सम्मान की रक्षा का ध्यान नहीं था। परस्पर द्वेष के कारण आपस में लड़-झगड़ कर वे अपनी एकता और शक्ति को खोते जा रहे थे। इस समय युद्ध में उन्माद जगाने के लिए कवि राजाओं की झूठी प्रशंसा किया करते थे। इन कवियों को 'भाट' कहा जाता था। मुसलमानों ने ऐसी परिस्थिति का भरपूर लाभ उठाया। संवत् 1074 में सर्वप्रथम महमूद गजनवी के नेतृत्व में भारत पर मुसलमानी आक्रमण हुआ। ऐसी परिस्थिति में कुछ राजा विदेशियों को रोकने में उलझे रहे और कुछ विदेशियों को मदद देते रहे। यही कारण था कि संवत् 1258 में कन्नौज के राजा जयचन्द्र के विश्वासघात के कारण पृथ्वीराज की मुहम्मद गोरी से पराजय हुई और भारत में मुसलमानी शासन की नींव पड़ी। फलतः अधिकांश उत्तरी राज्यों पर मुसलमानों ने कब्जा जमा लिया। मुहम्मद गोरी के मरने के बाद कुतुबुद्दीन ने गुलाम वंश की नींव डाली। इसके बाद खिजली वंश, तुगलक वंश और लोदी वंश के कई अत्याचारी राजाओं ने भारत पर शासन किया। इस प्रकार उस समय देश की राजनीतिक परिस्थिति अत्यन्त भयावह, अशान्त और संघर्षमय थी। जनता में राजनीतिक चेतना का अभाव था। सम्पूर्ण जनता ईर्ष्या और द्वेष की भावना से ग्रसित थी। ऐसे विषाक्त राजनीतिक वातावरण में आदिकालीन साहित्य लिखा गया।

Edit with WPS Office

2. सामाजिक परिस्थिति — आदिकाल का समाज मोटे तौर पर दो खेमों में बँटा था । एक खेमा राजाओं, सामन्तों, सरदारों, दास-दासी और भाट आदि का था । दूसरा खेमा सामान्य जनता का था । पहले खेमे में दो वर्ग थे — एक सेव्य और दूसरा सेवक । सेव्य वर्ग में राजा, सामन्त और सरदार थे और दूसरे वर्ग में दास-दासी, भाट आदि थे । दूसरा वर्ग पहले वर्ग की सेवा, मनोरंजन और खुशामद में लगा हुआ था । इस खेमे के लोग सामन्तीय परिवेश से दूर रहकर जीवनयापन कर रहे थे । दोनों खेमों में बहुपत्नीत्व, स्वयंवर, सतीत्व, जाति-पाँति, टोना-टोटका, मंत्र-तंत्र और योग-जादू का खूब प्रचार था । वर्णानुसार जाति-व्यवस्था प्रचलित थी । सामन्ती प्रथा के कारण लोग विद्वेष की अग्नि में जल रहे थे । स्वयंवर प्रथा विद्यमान थी । जौहर का भी प्रचलन था । राजपूतों का एकमात्र कार्य धर्म-युद्ध करना था । पत्नी वीर पति की कामना करती थी, बहन वीर भाई चाहती थी और माता वीर पुत्र को जन्म देने में अपना गौरव समझती थी । ब्राह्मण युद्ध से वंचित थे और तरह-तरह के सम्प्रदाय गढ़कर ब्राह्मणत्व से वंचित होते जा रहे थे । सामान्य जनता में मनोबल की कमी थी । ऐसी सामाजिक परिस्थिति में आदिकालीन साहित्य लिखा गया । इसका व्यापक प्रभाव आदिकालीन काव्यों पर पड़ा ।

3. धार्मिक परिस्थिति — आदिकाल प्रारम्भ होने के पहले से ही हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म विद्यमान थे । इस काल में वैदिक एवं पौराणिक धर्म अपने वास्तविक आदर्शों से दूर हट गए थे । बौद्ध एवं जैन धर्म का पतन हो रहा था । हर्षवर्द्धन के शासन काल में ही बौद्ध धर्म में दो शाखाएँ (हीनयान और महायान) हो गयी थीं । इन दोनों का संघर्ष हर्ष की मृत्यु के बाद बढ़ गया । धर्म में आडम्बर का प्रवेश हो चुका था । भिक्षुक बने हुए पुरुष मीन, मदिरा, मत्स्य, मुद्रा को अपनाते जा रहे थे । गुर्जर और सोलंकी राजाओं के हिंसक बन जाने से जैन धर्म अपने अहिंसा के मार्ग को भूल गया था । दिगम्बरों और श्वेताम्बरों की खाई चौड़ी हो गई थी । जाति-पाँति के विरोधी जैनी अब जातियों में बँटने लगे थे । इस समय हिन्दू धर्म अनेक सम्प्रदायों में बँट चुका था । ये सभी सम्प्रदाय आपस में लड़-झगड़ रहे थे । इसी प्रकार की विकृत एवं संघर्षमय परिस्थितियों के बीच इस्लाम का प्रवेश हुआ । अत्याचारी मुसलमानों की फौजों ने अन्य धर्मों एवं सम्प्रदायों के मंदिरों, मठों और गढ़ों को नष्ट कर दिया । इस प्रकार तत्कालीन धार्मिक वातावरण दूषित हो गया था । इसका प्रभाव आदिकालीन साहित्य पर भी पड़ा । साधारण जन-समाज किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर भटक रहा था । इस समय की परिस्थितियाँ ऐसी नहीं थी कि श्रेष्ठ लोक काव्य की रचना हो सके । आदिकाल की धार्मिक परिस्थिति की यही संक्षिप्त कहानी है ।

4. साहित्यिक परिस्थिति — आदिकालीन साहित्य में भीतरी कलहों और बाह्य संघर्षों का झंकार सुनाई पड़ता है । इस काल के प्रथम चरण में संस्कृत में साहित्य लिखा गया किन्तु उसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर नहीं पड़ा । कालान्तर में संस्कृत साहित्य का पतन होने लगा और अपभ्रंश तथा देशी भाषाओं में रचनाएँ हुई । अपभ्रंश में जैन साहित्य, सिद्ध साहित्य तथा नाथ साहित्य की रचना हुई और देशी भाषा में रासो साहित्य या चारण साहित्य का सृजन हुआ । इस साहित्य में धार्मिक विचारों की प्रधानता थी । यह साहित्य प्रचारार्थ लिखा जाता था । योगी और साधक घूम-घूम कर इसके द्वारा अपने सैद्धान्तिक विचारों को प्रचारित करते थे । दूसरी तरफ भाट या चारण कवियों द्वारा भी साहित्य सृजन हो रहा था । इनका लक्ष्य उच्च साहित्य सृजन की ओर नहीं था । ये विभिन्न राजाओं के आश्रय में रहकर ऐतिहासिकता से दूर

Edit with WPS Office

Edit with WPS Office

अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों द्वारा अपने आश्रयदाताओं का गुणगान करते थे । देश तथा समाज-हित की ओर उनका ध्यान नहीं था । इस प्रकार इस काल के साहित्य पर किसी एक प्रवृत्ति या एक ही विचारधारा का प्रभाव नहीं है वरन् विभिन्न साहित्यिक विचारों के घात-प्रतिघातों से यह प्रभावित है ।

आदिकालीन साहित्य

आदिकालीन साहित्य को भाषा के आधार पर मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है —

1. अपभ्रंश साहित्य
2. लौकिक साहित्य (वीरगाथात्मक साहित्य)

1. अपभ्रंश साहित्य — यह निर्विवाद तथ्य है कि हिन्दी-साहित्य का प्रादुर्भाव अपभ्रंश में ही हुआ । यह भाषा 500 ई० पूर्व के लगभग प्रयुक्त होनी आरम्भ हुई और इसका प्रभाव 1500 ई० तक हिन्दी साहित्य पर पड़ता रहा । यही कारण है कि इस काल के साहित्य को अपभ्रंश काल का साहित्य कहा गया है । अपभ्रंश साहित्य को विषय की दृष्टि से तीन भागों में बाँटा जा सकता है —

(क) सिद्ध साहित्य
(ख) जैन साहित्य
(ग) नाथ साहित्य

(क) सिद्ध साहित्य — इस साहित्य में सिद्धों और योगियों की रचनाएँ आती हैं । बौद्ध धर्म का उदय वैदिक कर्मकांडों की जटिलताओं की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ । प्रथम शताब्दी में बौद्ध धर्म विकृत होकर हीनयान तथा महायान नामक दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गया । अपनी दुर्बलताओं को जानकर बज्रयान सम्प्रदाय ने तंत्र-मंत्र के माध्यम से जनता को मुग्ध करना प्रारम्भ किया । तंत्र-मंत्र द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की ऐसी चेष्टा करने वाले योगी ही 'सिद्ध' कहलाने लगे । इनमें 84 सिद्ध हुए हैं । सरहपा, लुइपा, काण्हपा, भूइपा आदि कवियों की गणना उन्हीं सिद्धों में की जाती है । उनकी रचनाओं में सरहपा-कृत 'दोहा कोश' एक प्रौढ़ रचना है । इसी प्रकार अन्य सिद्धों ने भी रचनाएँ की हैं । उनकी रचनाएँ तांत्रिक-विधान, योग साधना, आत्म निग्रह, श्वास निरोध, नाड़ियों की स्थिति आदि से संबंधित है । ये ईश्वर को निर्गुण मानते थे और ब्राह्मण, वेद, पूजा-पाठ आदि का खण्डन करते थे । इनकी कविताओं में साहित्यिक लालित्य का अभाव है । इनकी प्रधान रचनाएँ चर्यागीत, दोहा, सोरठा, चौपाई आदि छन्दों में हैं । भाषा की दृष्टि से इनका काव्य महत्वपूर्ण है । इससे हमें भाषा के प्रारम्भिक रूप का पता चलता है ।

(ख) जैन साहित्य — यह धार्मिक साहित्य है । उस युग में जैन साधुओं ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए साहित्य की रचना की । इसमें हिन्दी का प्रारम्भिक रूप है । इस साहित्य को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है — पुराण काव्य, चरित काव्य, कथा काव्य और रहस्यवादी काव्य । पुराण काव्य पौराणिक पुरुषों के जीवन को लेकर प्रबंध रूप में प्रस्तुत किये गये हैं । इनमें स्वयंभू-कृत 'पउम चरित' (पद्म-चरित) और पुष्पदन्त-कृत 'महापुराण' विशेष प्रसिद्ध हैं । चरित काव्य लोकप्रिय व्यक्तियों के चरित्रों को लेकर लिखे गए

Edit with WPS Office

है। इन काव्यों में पुष्पदन्त-कृत 'जसहर चरिउ' (यशोधर चरित) की विशेष ख्याति है। तीसरे प्रकार की जैन-रचनाएँ कथा काव्य हैं। ये रचनाएं कल्पना प्रसूत या लोककथाओं पर आधारित हैं। जैनियों ने कुछ रहस्यवादी रचनाएँ भी लिखी हैं। इनमें जोइन्दु-कृत 'परमात्म प्रकाश' एवं राम सिंह-कृत 'पाहुड़ दोहा' प्रमुख है। जैन कवियों ने शृंगार विषयक रचनाएँ भी लिखी हैं। इस समय सभी जैन कवियों की प्रवृत्ति साहित्य की ओर न होकर धर्म की ओर थी। इस काल में हिन्दी जैसे-जैसे विकसित होती गई, वह क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंश से दूर होती गई और संस्कृत के तत्सम शब्दों को अपनाती गई।

(ग) नाथ साहित्य — योगियों को नाथ भी कहते है। यह सम्प्रदाय सिद्ध-सम्प्रदाय का विकसित एवं पल्लवित रूप है। नाथ पंथ चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक धर्म और साहित्य को प्रभावित करता रहा। नाथपंथी साधुओं ने गद्य तथा पद्य में अपने धार्मिक साहित्य की रचना की है। इनकी काव्य की भाषा को 'सधुक्कड़ी भाषा' कहा गया है। नाथ योगियों में गोरखनाथ, आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, चर्पटिनाथ आदि प्रसिद्ध हैं। इनमें गोरखनाथ का बहुत महत्त्व है। ये नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इनकी रचनाएँ 'गोरखवाणी' में संकलित है। उन्होंने सिद्धों के मांस, मदिरा और नारी की साधना का विरोध कर जन-जीवन को सात्विकता की ओर अग्रसर किया। फलतः संयमहीन जीवन से समाज की रक्षा हुई और भारतीय धर्म-साधना में नवीन प्राण का संचार हुआ।

2. लौकिक साहित्य — लौकिक साहित्य में चारण या वीरगाथात्मक साहित्य को रखा गया है। वीरगाथात्मक साहित्य का भाषा के विकास की दृष्टि से विशेष महत्व है। इस युग के कवि राज्याश्रित थे। वे अपने आश्रयदाताओं की झूठी वीरता की प्रशंसा करते थे। शौर्य-प्रदर्शन इस युग की प्रमुख विशेषता थी। इस काल की सभी रचनाएँ डिंगल, पिंगल भाषा में लिखी गयी हैं। इनमें ऐतिहासिकता का अभाव है। इस समय की प्रमुख रचनाएँ सारंगधर-कृत 'हम्मीर रासो', दलपति-कृत 'खुमाण रासो', कल्लोल-कृत 'ढोलामारु-रा दूहा' आदि हैं। ये रचनाएँ दोहा, तोटक, तोमर, गाथा, गाहा, पद्धरि, रोला, कुण्डलिया आदि छन्दों में लिखी गयी हैं। इनमें अधिकांश रचनाएँ संदिग्ध हैं। विद्यापति का स्थान भक्तिकाल की सीमा में पड़ता है, पर परम्परा की दृष्टि से उन्हें आदिकाल में ही रखकर पढ़ा जाता है।

Edit with WPS Office

आदिकाल

प्रमुख प्रवृत्तियां और विशेषताएँ

आदिकाल (वीरगाथा काल) की सामान्य प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ

आदिकाल में साहित्य की विभिन्न धाराएँ है । इस युग में एक ओर सिद्ध, नाथ एवं जैन साहित्य का निर्माण हो रहा था, तो दूसरी ओर चारण कवि वीरगाथा साहित्य या चारण साहित्य का निर्माण कर रहे थे । इन सभी धाराओं की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं । इन सबको सम्पृक्त रूप में लिखा जाय तो आदिकालीन साहित्य की अधोलिखित विशेषताएँ होंगी –

1. वीरगाथात्मक काव्य – आदिकालीन साहित्य में प्रायः वीरगाथात्मक काव्यों का प्रणयन किया गया है । इस समय का साहित्य युद्धों और संघर्षों की कथाओं से परिपूर्ण है । कविगण राजाओं की वीरता तथा उनके ऐश्वर्य की प्रशंसा करते थे । वे स्वयं भी युद्धों में नंगी तलवार लेकर राजा के साथ जाया करते थे । राजा अपनी वीरता प्रदर्शित करने के लिए सदैव

Edit with WPS Office

युद्धों में अनुरक्त रहते थे । शौर्य-प्रदर्शन इस काल की एक प्रमुख विशेषता हो गयी थी । पृथ्वीराज रासो में चन्दबरदाई ने पृथ्वीराज के शौर्य तथा उनकी सेना की वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है । इस समय की वीरता का आदर्श निम्न पंक्तियों द्वारा स्पष्ट हो जाता है —

बारह बरस लै कुकुर जिये, और तेरह लौं जिये सियार ।
बरस अठारह छत्री जीवे, आगे जीवन को धिक्कार ॥

2. रासो ग्रंथों की प्रधानता — आदिकाल में जितने भी काव्य मिलते है उनमें अधिकांश ग्रंथों के नाम के पीछे 'रासो' शब्द जुड़ा हुआ है । कुछ लोग रासो का संबंध रहस्य अथवा रसायन से जोड़ते है किन्तु यह भ्रामक है । मूल रूप में 'रासक' एक शब्द है जिसे गेय रूपक भी कहते हैं । इन्हे ताल-लय के अनुसार नाच-गान कर गाया जाता है । इन्हे दो व्यक्तियों के प्रश्नोत्तरों या संवादों में भी प्रस्तुत करने का विधान है । अतः तत्कालीन कवियों ने परम्परागत रूप में इस शैली को अपनाया है । संदेश रासक, बाहुबलि रास, पृथ्वीराज रासो, भरतेश्वर रास आदि में इसी शैली का प्रयोग है ।

3. आश्रयदाताओं की प्रशंसा — इस काल के कविगण राज्याश्रित थे । वे अपने आश्रयदाताओं का यशगान और झूठी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा किया करते थे । युद्ध में या युद्ध से लौटने पर राजा अपनी प्रशंसा सुनना चाहते थे । ऐसी स्थिति में चारण कवियों ने भिन्न-भिन्न राजाओं का आश्रय खोजकर स्वर्ण मुद्राओं के लोभ में उनका झूठा यशगान किया । इन कवियों की वाणी अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा और यशोगान में कभी कुण्ठित नहीं हुई । निम्न पंक्तियों में रणथम्भौर के राजा हम्मीर का यशोगान करते हुए कवि ने लिखा है —

ढोला मारिय दिल्ली मँह मुच्छिय मेच्छ सरीर ।
पुर जज्जला मंतिवर चलिय वीर हम्मीर ॥
चलिय वीर हम्मीर पाअभर मेइणि कंपई ।
दिगमगणह अंधार धूलि सूरिय रह झंपई ॥
दिगमगणह अंधार आनु खुरसानक ओल्ला ।
दरमरि दमसि विपक्ख मार दिल्ली मँह ढोल्ला ॥

4. अप्रामाणिक रचनाएँ — आदिकाल की अधिकतर रचनाएँ अप्रामाणिक है । उन्हे प्रामाणिकता की कसौटी पर कसने पर वे खरी नहीं उतरतीं । इसका कारण यह है कि सभी रासो ग्रंथों की भाषा, शैली, भाव और विषय-वस्तु में इतना अधिक अन्तर उत्पन्न हो गया है कि उन्हें प्रामाणिक मानना असंगत प्रतीत होता है । वे ग्रंथ कब लिखे गए और इनकी आधुनिक प्रतियाँ कब की है आदि प्रश्नों के उत्तर आज तक स्पष्ट नहीं दिए जा सकते । एक ही पुस्तक की भिन्न-भिन्न प्रतियों के रचना-काल की विभिन्नता से भी पता चलता है कि इस काल की रचनाएँ अप्रामाणिक हैं । खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो आदि प्रामाणिकता की दृष्टि से संदिग्ध हैं ।

5. वीर रस के साथ शृंगार का वर्णन — इस काल के काव्यों में वीर रस तथा शृंगार रस का अद्भुत सम्मिश्रण है । उस समय युद्ध का बाजार गरम था । युद्धों का एकमात्र कारण नारी लिप्सा थी । इस समय के कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के शौर्यपूर्ण युद्धों के वर्णन के

Edit with WPS Office

साथ ही सुन्दरियों के सौन्दर्य का वर्णन भी किया है । इस प्रकार तत्कालीन साहित्य में जहाँ वीर रस प्रधान काव्य लिखे गए वहीं राजाओं के विलासी प्रवृत्ति के कारण श्रृंगारिक रचनाएँ भी लिखी गयीं । इस प्रकार वीर एवं श्रृंगार रस जैसे दो विरोधी रसों का समावेश आदिकालीन साहित्य में सुन्दर ढंग से किया गया है । श्रृंगार रस का चित्रण देखें —

मनहुँ कला ससभान कला सोलह सों बन्निय ।
बाल वैस ससि ता समीप अमृत रस पिन्निय ।।
विगसि कमल भ्रिंग भ्रमर बैन खंजन भ्रिंग लुट्टिय ।
हीर वीर अरु बिंब मोती नख-सिख अहि धुट्टिय ।।

6. राष्ट्रीय भावना का अभाव — आदिकाल के साहित्य में राष्ट्रीय भावना का स्वर नहीं मिलता । इस समय तुर्कों के आक्रमण से देश को बचाने के लिए ऐसे साहित्य और साहित्यकारों की आवश्यकता थी जो देश-प्रेम की भावना भरकर देश की रक्षा कर सके । किन्तु ऐसा नहीं हो सका । कवियों ने राष्ट्रीयता की भावना भरने के बदले आपसी विरोध की जलती हुई आग में अपनी कवितारूपी घी डाला । अतः वे अपने आश्रयदाताओं के दंभ को बढ़ाने और उन्हें दूसरों से लड़ने के लिए काव्य-रचना कर उत्साहित करते रहे । उन्होंने राष्ट्र के लिए एक भी वाक्य नहीं लिखा ।

7. युद्धों का सजीव चित्रण — आदिकाल की रचनाओं में युद्धों के सजीव चित्र देखने को मिलते हैं । वीर भावों से अनुप्राणित कर्कश शब्दावली में युद्धों का जैसा प्रभावक वर्णन इस काल के काव्यों में हुआ है वैसा हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है । सेना प्रस्थान, चढ़ाई, हथियार, रण-कौशल और जय-पराजय को बड़े सुन्दर ढंग से कवियों ने चित्रित किया है । इस काल के कवियों का ध्यान रस अभिव्यक्ति की अपेक्षा रण-कौशल पर अधिक केन्द्रित है । यही कारण है कि उनके काव्यों में शस्त्रों की झंकार स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ती है । यथा —

बज्जिय घोर निसान शन चौहन चहुँ दिसि,
सकल सूर सामन्त समर बल जंत्र मंत्र तिसि ।
उट्ठि राज पृथ्वी राज बाग लग्ग वीरनट,
कढ़त तेग मनोवेग लगत बीज झट्ट घट्ट ।।

8. अपभ्रंश और डिंगल भाषा का प्रयोग — अपभ्रंश और डिंगल आदिकाल की प्रधान भाषाएं हैं । शौरसेनी अपभ्रंश से डिंगल की उत्पत्ति हुई है । यह नागर अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थान की साहित्यिक भाषा थी । यह वीर रस के लिए उपयुक्त थी, इसलिए इसका प्रयोग आदिकालीन साहित्य में प्रमुखता के साथ हुआ । उस समय के कवि डिंगल भाषा में अपने भावों की अभिव्यक्ति और आश्रयदाताओं की प्रशंसा किया करते थे । यही कारण है कि वीरगाथा साहित्य डिंगल पिंगल भाषा में लिखा गया । जैन साहित्य की भाषा पश्चिमी अपभ्रंश है ।

9. प्रकृति-चित्रण — आदिकालीन साहित्य में प्रकृति का आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में चित्रण मिलता है । नगर, नदी, पर्वत, वन आदि का वर्णन बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है । कहीं-कहीं कवियों ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में भी स्वतंत्र वर्णन किया है । जहाँ स्वतंत्र प्रकृति का चित्रण हुआ है, वहाँ कविगण इतना बढ़ा-चढ़ाकर प्रकृति चित्रण करने में तल्लीन हो

Edit with WPS Office

गए हैं कि काव्य मे नीरसता-सी आ गयी है । शरद्-ऋतु का वर्णन करते हुए नायिका कहती है —

किं तहि देस शाह फुरइ जुन्ह निसि णिम्मल चन्द्रह ।
यह कलरउ न कुणति हंस फल सेवि रविंदह ॥
अह पायउ पहु पढ़इ कोइ सुललिय पुण राइण ।
अह पंचउ णहु कुणई कोई कावालिय भाइण ॥

10. ऐतिहासिकता का अभाव एवं कल्पना का आधिक्य — वीरगाथा काव्यों में ऐतिहासिकता की अपेक्षा कल्पना का प्राचुर्य है । इसके चरित नायक इतिहास प्रसिद्ध हैं, फिर भी इनमें ऐतिहासिकता का अभाव है । उनका वर्णन इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता । वीरगाथा के कवियों द्वारा अपने ग्रंथों में दिए गए संवत् और तिथियाँ इतिहास से मेल नहीं खाती । उनके अनैतिहासिक तत्वों के अभाव का इसी से पता चलता है कि कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के शौर्य का प्रदर्शन करने के लिए उनका युद्ध उन ऐतिहासिक वीरों के साथ करवाया है जो उनके समकालीन नहीं थे । यहाँ तक कि पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज को उन राजाओं का भी विजेता कहा गया है जो उनसे कई शताब्दियों पूर्व अथवा पश्चात् विद्यमान थे । अतः यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस काल के कवियों का उद्देश्य इतिहास की रक्षा करना नहीं था अपितु अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करना था । यही कारण है कि वीरगाथा काव्यों में इतिहास की अपेक्षा कल्पना का बाहुल्य है ।

11. समाज से अलग काव्य — आदिकालीन साहित्य जन-जीवन से अत्यधिक दूर है । इसका यह कारण है कि राज्याश्रित कवि अपने आश्रयदाताओं का दरबार छोड़कर जन-जीवन से सम्पर्क ही नहीं कर सके । वे राजाओं के युद्धों का वर्णन करने और उनके मनोरंजन के लिए किसी नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करने में ही सिमट कर रह गए । साधारण जीवन में किस प्रकार का परिवर्तन हो रहा है, यह बतलाना इन कवियों का लक्ष्य ही नहीं था । वीरगाथाओं और रीति ग्रंथों के कवियों ने स्वांतः सुखाय की भावना के स्थान पर 'स्वामिनः सुखाय' की भावना से काव्यों की रचना की है । इस प्रकार इस काल के काव्य साधारण जन-जीवन के घात-प्रतिघातों से अलग हैं ।

12. काव्य-रूप — आदिकाल में प्रबंध, मुक्तक और गीत प्रधान तीन प्रकार के काव्य लिखे गए हैं । 'बीसलदेव रासो' मुक्तक काव्य के रूप में, 'पृथ्वीराज रासो' प्रबंध काव्य के रूप में और 'आल्ह खण्ड' श्रेष्ठ गीति काव्य के ढर्रे पर हैं । इसी प्रकार वीरधारा में प्रबंध काव्यों की अधिक रचना हुई है ।

13. विविध छन्दों का प्रयोग — आदिकालीन काव्यों में छन्द के क्षेत्र में एक क्रांति-सी हो गयी है । इस काल के साहित्य में जितनी छन्दों की विविधता है उतनी इसके परवर्ती साहित्य में उपलब्ध नहीं है । दोहा, तोमर, तोटक, सोरठा, रोला, उल्लाला, गाथा, गाहा, सट्टक, पद्धरि, कुंडलिया आदि छन्दों का प्रयोग बड़ी कलात्मकता के साथ रासो ग्रंथों में किया गया है ।

14. अन्तर्विरोध — हिन्दी साहित्य का आदिकाल अन्तर्विरोध, मतभेद और विभिन्नताओं का काल है । इस काल में सबसे अधिक विरोध पूर्व और पश्चिम में है । पश्चिम का साहित्य परम्परागत या रुढ़िगत है । इसमें राजाओं की स्तुति की गई है, महापुरुषों का

Edit with WPS Office

यशोगान किया गया है । नकली वीरों की गौरव गाथा गायी गयी है, शृंगार की रसमयता घोली गई है और थोथी नैतिकता का प्रचार किया गया है । पूर्व का साहित्य ठीक इसके विपरीत है । उसमें शास्त्रों का विरोध है, परम्परागत मान्यताओं का खण्डन है, ब्राह्मणवाद की निन्दा है, जाति-भेद पर चोट है, अक्खड़पन है, डाँट-डपट है और सहज जीवन का संदेश है । सबसे बड़ी बात तो यह है कि एक ही कवि की रचनाओं में विरोधी स्वर मिल जाते हैं । विद्यापति को लीजिए, वे शैव हैं तो शाक्त भी है, भक्त है तो शृंगारी भी हैं । इनमें यदि सामन्तवाद की झलक है तो कोकिल की मुक्त पुकार भी है । स्वयंभू एवं पुष्पदन्त रामकाव्य के कवि हैं तो कृष्ण-काव्य के भी कवि हैं । इसी तरह जैन साहित्य, नाथ साहित्य, सिद्ध साहित्य, लौकिक साहित्य की विभिन्न धाराओं में कई प्रकार के विरोध के दर्शन होते हैं ।

प्रमुख कवि

चन्दबरदाई

जीवन परिचय — महाकवि चन्दबरदाई दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान के बाल सखा, घनिष्ठ मित्र, दरबारी कवि, श्रेष्ठ सामन्त तथा परामर्शदाता थे । उनका जन्म संवत् 1206 के आस-पास लाहौर में हुआ था । वे एक श्रेष्ठ विद्वान थे तथा साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष-काव्य, नाट्य आदि शास्त्रों में उनकी अच्छी पैठ थी । जाति के वे भाट थे । उनकी दो पत्नियाँ थीं — कमल और गौरी । वे अपनी दूसरी पत्नी पर अधिक अनुरक्त थे क्योंकि वह उनके लिए काव्य की प्रेरणा थी । दोनों पत्नियों से उन्हें एक पुत्री और दस पुत्र थे । पुत्रों में सबसे कर्मठ और योग्य पुत्र का नाम जल्हण था । चन्द अजमेर में पले थे । यहाँ के राजघराने में उनकी यजमानी थी । परिणामतः उन्हें अपने सहज मित्र पृथ्वीराज के साथ पलने एवं पढ़ने का मौका मिला । वह युद्ध, आखेट तथा यात्रादि में सदा महाराज के साथ रहा करते थे । दिल्ली में पृथ्वीराज के यहाँ रहकर उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की । जब शहाबुद्दीन गोरी ने युद्ध में पृथ्वीराज को पराजित कर उन्हें बन्दी बनाकर गजनी ले गया और कारागार में बन्द कर दिया तब चन्द भी वहाँ पहुँचे । गजनी जाते समय वे 'पृथ्वीराज रासो' नामक अपनी अपूर्ण रचना अपने पुत्र जल्हण को पूर्ण करने के लिए दे गए । जल्हण ने ही इस ग्रंथ को पूर्ण किया —

पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चलि गज्जन नृप काज ।

दंत कथा है कि गजनी पहुँचकर चन्दरबरदाई ने पृथ्वीराज को मुक्त कराने के लिए पृथ्वीराज द्वारा शब्दभेदी बाण चलाने की योजना बनाई । पृथ्वीराज ने चन्दरबरदाई के संकेत पर बाण चलाकर मुहम्मद गोरी का काम तमाम कर दिया, तत्पश्चात् चन्दबरदाई और पृथ्वीराज ने परस्पर तलवार से एक दूसरे को मारकर आत्मोत्सर्ग किया । ऐसा कहा जाता है कि दोनों की जन्मतिथि एक ही थी और मृत्यु भी एक ही दिन हुई ।

काव्य-सौष्ठव — चन्दबरदाई की एकमात्र रचना 'पृथ्वीराज रासो' है । उन्होंने इस काव्य में वीरता का सजीव चित्रण करते हुए युद्ध-क्षेत्र के हर रूप-व्यापार को बड़े ही कौशल से चित्रित किया है । उनके काव्य में उत्साह और क्रोध प्रायः सम्पृक्त होकर आए हैं । उन्होंने वर्णनात्मक और भावात्मक दोनों शैलियों का निर्वाह सफलतापूर्वक किया है । वे लिखते हैं —

Edit with WPS Office

वीर रोस बर बैर बर, झुकि लग्गौ असमान
तौ नन्दन सोमेरु कौ, फिर बंधौ सुरतान
चन्द्रव्यूह नृप बंधि दल, पानि प्रथिराज नरिंद
सहि बंध सुरतान सौं, सेना किन निधि कंद ।

चन्दबरदाई केवल कल्पना विलासी ही नहीं थे अपितु एक दक्ष परामर्शदाता भी थे चाहे रूप-सौन्दर्य का वर्णन हो या ऋतु वर्णन का, वह सर्वत्र एक समान, अविचलित और प्रसन्न दिखाई देते थे । रूप-सौन्दर्य के चित्रण में कवि की सौन्दर्यप्रियता के साथ उनकी कलाप्रियता भी प्रकट हो जाती है । शशिव्रता का सौन्दर्य चित्र दर्शनीय है —

मनहुँ कला ससमान कला सोलह सों बन्निय ।
बाल बेस ससि ता समीप अंम्रित रस पिन्निय ॥
विगसि कमल भ्रिग भमर बैन खंजन भ्रिग लुट्टिय ।
हीर कीर अरु बिंब मोती नख-सिख अहि घुट्टिय ॥
छत्रपति गयंद हरिहंस गति, विह बनाय संचै सचिय ।
पदमनिय रूप पदमावतिय, मनहुँ काम कामिनि रचिय ॥

भाषा — चन्दबरदाई की भाषा संस्कृत, प्राकृत, ब्रजभाषा और अपभ्रंश से सम्पृक्त पिंगल है । उन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है । उनका शिल्प वर्णनात्मक, चित्रात्मक और संगठित है । उन्होंने ऐसे तो तत्कालीन प्रचलित कवित्त, दोहा, गाहा, त्रोटक, आर्या, तोमर, पद्धरी आदि छन्दों का प्रयोग किया है किन्तु उनकी छप्पय में विशेष रुचि प्रतीत होती है ।

साहित्य में स्थान — चन्दबरदाई आदिकालीन वीरगाथा धारा के महान कवि है । उनकी काव्य-भूमि आज भी अपनी विशिष्टताओं के कारण साहित्य प्रेमियों के लिए केन्द्रस्थली बनी हुई है । वीरगाथा धारा में उनकी बराबरी करने वाला अन्य कोई कवि नहीं है । चन्दबरदाई दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि ही नहीं थे अपितु बाल सखा और श्रेष्ठ सामन्त भी थे । वे षट्-भाषा, व्याकरण, साहित्य, छन्द शास्त्र, ज्योतिष, पुराण, नाटक आदि में पूर्णतया दक्ष थे । उनके द्वारा लिखित ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' को सर्वप्रथम वीर महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित किया गया है । अतः यह कहा जा सकता है कि पृथ्वीराज हिन्दुस्तान के ऐतिहासिक जगत के अस्तमान सूर्य थे तो चन्दबरदाई हिन्दी जगत के उदीयमान 'चन्द' थे । ऐसे महान रचनाकार की यश-प्रशस्ति अपनी संदेहास्पद अवस्था में भी हिन्दी साहित्य के इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अनन्त काल तक लिखी जाती रहेगी ।

अमीर खुसरो

अमीर खुसरो लोक काव्य धारा के प्रसिद्ध कवि हैं । उनका असली नाम अब्दुल हसन था । वे निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे । संवत् 1310 में एटा जिलान्तर्गत पटियाली नामक गाँव में उनका जन्म हुआ था । उनका संबंध खिलजी वंश, तुगलक वंश और गुलाम वंश के कई राजदरबारों से था । खुसरो के सामने ही दिल्ली के शासन पर ग्यारह सुल्तान बैठे जिनमें से सात की उन्होंने सेवा की । वह बहुत ही विनोदी प्रवृत्ति के, मिलनसार तथा उदार थे । उनके विनोदी प्रवृत्ति का परिचय उनकी रचनाओं से मिलता है । उनकी जीवन-लीला संवत् 1382 में

Edit with WPS Office

समाप्त हो गयी । अमीर खुसरो का व्यक्तित्व दरबारी, अमीर, भाषाविद्, कवि, योद्धा, राजनीतिज्ञ और संगीतकार का मिला-जुला व्यक्तित्व है । उन्होंने एक ओर आत्मशासन एवं संयाम और दूसरी ओर ऐहिकता तथा दरबारी विलासिता के बीच में छटपटाते हुए जनमानस को स्वस्थ मनोरंजन दिया । भाषा के क्षेत्र में उन्होंने अपभ्रंश एवं डिंगल के स्थान पर जनसाधारण की भाषा का प्रयोग किया है । उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी एवं फारसी का मिश्रण कर भाषा संबंधी हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रथम प्रयत्न भी किया है । खुसरो ने धर्म और संस्कृति आदि क्षेत्रों में कई प्रकार की विभिन्नताओं को भी मिटाया । उन्होंने 99 पुस्तकें लिखीं, जिनमें कई लाख शेर हैं । उनके प्रमुख ग्रंथ मसनवी तुगलकनामा, मसनवी लैला व मजनू, मुकरी, मसनवी शीरीं-व खुसरो, मसनवी अनवर आदि हैं । अपनी कविताओं में उन्होंने शृंगार, वीर, शान्त और भक्ति रस का प्रयोग किया है । उनकी पहेलियों एवं मुकरियों में ब्रजभाषा से प्रभावित खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है तथा गीतों और दोहों में शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग है । संगीत के क्षेत्र में उन्होंने गजल और कव्वाली की विभिन्न शैलियों को जन्म दिया है । इस प्रकार अमीर खुसरो ने साहित्य को लोक की ओर प्रवाहित किया है । अतः आदिकाल की लोकधारा के कवियों में खुसरो उच्चतम स्थान के हकदार हैं । वह अपनी मौलिकता के लिए हिन्दी साहित्य में सदैव अविस्मरणीय रहेंगे ।

नरपतिनाल्ह

नरपतिनाल्ह आदिकालीन लोक-काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं । वह अजमेर के राजा बीसलदेव के दरबारी कवि थे । उन्होंने प्रसिद्ध प्रेमगीतिकाव्य 'बीसलदेव रासो' की रचना की । उन्हें कवि हृदय प्राप्त था । वे ऐतिहासज्ञ नहीं थे । इसलिए उनकी रचनाओं में ऐतिहासिकता का अभाव है । उन्होंने सुने सुनाये आख्यान का सहारा लेकर लोगों को प्रसन्न करने के लिए काव्य का ढाँचा खड़ा किया । समय के परिवर्तन के साथ उनकी रचना में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होता गया जिससे काव्य का असली रूप दब गया और उसमें कई ऐतिहासिक भ्रांतियाँ आ गयी । उनकी भाषा में अपभ्रंश, अरबी, राजस्थानी, गुजराती एवं फारसी के शब्दों का प्रयोग है । अतः उनकी भाषा को उस युग की भाषा का संधि-स्थल कह सकते हैं । उनके जन्म तिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद है । कुछ विद्वानों का अनुमान है कि उनका जन्म संवत् 1058 में अजमेर में हुआ था ।

जगनिक

जगनिक आदिकालीन लोक-काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि है । वह कालिंजर (चन्देल राज्य) के राजा परमाल देव के दरबारी कवि थे । उन्होंने 'परमाल रासो' या 'आल्ह खण्ड' नामक प्रसिद्ध वीरगीति की रचना की है । इस ग्रंथ का संबंध महोबा से है । परमाल की सेना में बनाफर-शाखा के वीर क्षत्रिय आल्हा और ऊदल थे । इन्ही दो वीरों की शौर्यपूर्ण गाथा का चित्रण मूलरूप से 'आल्ह खण्ड' में किया गया है । जगनिक ने इस ग्रंथ में वीर और शृंगार की रसमयता को सम्युक्त रूप से चित्रित किया है । इस ग्रंथ का वीरत्वपूर्ण स्वर तो सुरक्षित है, परन्तु भाषा और कथानकों में बहुत अधिक परिवर्तन आ गया है । इसलिए यह ग्रंथ संदिग्ध रूप में ही उपस्थित है, फिर भी इसकी हृदयस्पर्शी भावधारा बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान की जनता का हियहार बनी हुई है ।

Edit with WPS Office

विद्यापति

शृंगार के चतुर चितेरे मैथिल कोकिल विद्यापति संस्कृत के पंडित, अपभ्रंश के कवि और मैथिली के गीतकार है । वे तिरहुत के महाराजा शिवसिंह के आश्रय में रहते थे । महारानी लखिमा देवी भी इनकी भक्त थी । उनका जन्म संवत् 1425 में दरभंगा जिला (बिहार) के 'बिसपी' नामक गाँव मे हुआ था । उनके पिता का नाम गणपति ठाकुर है । विद्यापति ने जहाँ एक ओर वीरगाथा काल का प्रतिनिधित्व किया है, वहीं दूसरी ओर हिन्दी में भक्ति और शृंगार की परम्परा का प्रवर्तन भी किया है । उन्होंने भू-परिक्रमा, पुरुष परीक्षा, लिखनावली, शैव सर्वस्वसार, गंगा-वाक्यावली, दुर्गाभक्ति-तरंगिनी, दान वाक्यावली, विभाग सार, गोरक्षा विजय, गया पत्तलक आदि ग्रंथ संस्कृत में लिखे; 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' अवहट्ठ में लिखे गया और 'विद्यापति पदावली' मैथिली भाषा में लिखा है । इनका व्यक्तित्व विविधमुखी है । उन्होंने 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' में जहाँ अपने आश्रयदाता शिव सिंह तथा कीर्ति सिंह के शौर्य का वर्णन किया है वहीं 'विद्यापति पदावली' में राधा-कृष्ण की प्रणय लीलाओं का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है । इसमें उनका शृंगारी रूप पूर्णतः उभर आया है । अतः उन्हें वीरगाथा का कवि या शृंगार का कवि या भक्त कवि माना जाय, यह एक टेढ़ा सवाल है । विद्यापति की भाषा मधुर और स्निग्ध है । उनकी रचनाओं में आदि से अन्त तक प्रसाद गुण है । उन्होंने अनुप्रास अलंकार का अधिक प्रयोग किया है । उनकी जीवन लीला संवत् 1497 की कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को समाप्त हो गयी । इस प्रकार शृंगार के महान कवि विद्यापति की कोमल मधुरता, कोमल-कान्त-पदावली, भावुकता और नव भावोन्मेषिणी प्रतिभा वर्षों से काव्य-रसिकों को आकर्षित करती आ रही है और आगे भी करती रहेगी ।

सारङ्गधर

सारङ्गधर आदिकाल के वीरधारा के प्रमुख कवि हैं । उनके समय-काल का कोई निश्चय नहीं हो सका है । उन्होंने सारङ्गधर साहित्य, सारङ्गधर-पद्धति, हम्मीर रासो और हम्मीर काव्य नामक चार ग्रंथों की रचना की है । उनकी पहली दो रचनाएँ संस्कृत में और तीसरी तथा चौथी डिंगल भाषा में है । 'हम्मीर रासो' आदिकाल का प्रसिद्ध वीररसात्मक प्रबंध काव्य है । इस ग्रंथ का शिल्प रासक-शिल्प है । कवि ने इसमें वीर रस की अच्छी व्यंजना की है ।

सरहपा

सरहपा आदिकालीन योग धारा के सिद्ध कवि है । उनका समय नवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है । वे मूल रूप में जाति के ब्राह्मण है । वह बौद्ध धर्म अपना कर नालन्दा बौद्ध बिहार के दर्शन-विभाग में अध्यापन कार्य कर रहे थे । उन्होंने कई ग्रंथों का प्रणयन किया जिनमें से 'दोहाकोश', 'वज्रगीति', 'चर्यागीति', 'महासमुद्रोपदेश', 'उपदेश गीत' आदि प्रमुख है । वे विद्रोही कवि है । उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सर्वप्रथम साहित्यिक विद्रोह किया । इसके बाद ब्राह्मणवाद, शास्त्र, परम्परा, पाखण्ड आदि के विद्रोह को अपनी वाणी दी । सरहपा ने विद्रोह के साथ ही सहज जीवन एवं नैतिकता का उपदेश भी दिया है । उनके काव्य में मानवीय आत्मगौरव की प्रतिष्ठा है । उनकी भाषा सन्ध्या है और शिल्प उपदेशात्मक है ।

Edit with WPS Office

गोरखनाथ

गोरखनाथ योगमार्ग के संस्थापक कवि है । ये जाति के ब्राह्मण और मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे । उनका संबंध उत्तर प्रदेश के गोरखपुर से भी था । उनके समय में सारा देश वेदानुयायी और वेद विरोधी दो भागों में विभक्त था । शंकराचार्य के बाद गोरखनाथ निःसन्देह ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने शक्तिशाली धर्म की नींव डाली । हिन्दी और संस्कृत में उनकी लगभग 70 रचनाएँ प्राप्त हुई है । उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में गोरख शतक, सबदी, प्राण संकली, मछीन्द्र गोरखनाथ, गोरखदत्त गोष्ठी, निरंजन पुराण, गोरख सागर, अष्टाक्षरी आदि है । गोरखनाथ की भाषा उनके समय के अनुरूप नहीं है । इसमें अवधी और खड़ी बोली की विशेषताएँ पाई जाती है । योगमार्ग की भूमिका में उनका महत्त्व अप्रतिम है ।

पुष्पदन्त

महाकवि पुष्पदन्त जैन परम्परा के एक महान विद्वान, भाषाविद् तथा प्रतिभासम्पन्न कवि है । उनका समय ईसा की दशवीं शताब्दी माना जाता है । उनके प्रमुख ग्रंथ — जैन महापुराण, णायकुमार चरित (नागकुमार चरित), जसहर चरिउ (यशोधर चरित) तथा कोश ग्रंथ आदि है । उनके सभी ग्रंथ प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से सफल हैं । इनमें युद्धों, विजयों और देश-विदेश के नाना वर्णनो के साथ राजनीति, दर्शन, धर्म एवं विविध प्रसंगों का चित्रण है । 'जैन पुराण' 102 सन्धियों में लिखा गया है । उनकी भाषा पश्चिमी अपभ्रंश है । इनका व्यक्तित्व पांडित्यपूर्ण गरिमा से ओत-प्रोत है ।

प्रमुख काव्य

पृथ्वीराज रासो

चन्दबरदाई-कृत 'पृथ्वीराज रासो' आदिकालीन एक विशालकाय चरित-काव्य, रासक-काव्य और रस-प्रवण काव्य है । इसमें दिल्ली के चौहाण-नरेश पृथ्वीराज के शृंगार-मिश्रित शौर्य का वर्णन किया गया है । इसे हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य भी कहा जाता है । इसमें महाकाव्य की कई कलात्मक परम्पराओं का निर्वाह किया गया है; फिर भी तत्कालीन भारतीय जनता की चित्तवृत्ति की कमी है । कवि ने इसमें कला के भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष दोनों का सुन्दर वर्णन किया है । इसमें शृंगार रस के संयोग एवं वियोग दोनों रूपों का भी वर्णन है । शृंगार के साथ ही इस काव्य में वीर रस को भी प्रमुखता मिली है । युद्ध-क्षेत्र के हर रूप-व्यापार तथा क्रिया-प्रतिक्रिया को कवि ने बड़े ही कौशल से चित्रित किया है । इस ग्रंथ में कथा कहीं-कहीं चन्द और उनकी पत्नी के संवाद के रूप में चलती है और कहीं-कहीं शुक और शुकी के संवाद के रूप में है । चन्दबरदाई ने इसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा जैसे साम्यमूलक अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है । उन्होंने इसमें प्रकृति को उद्दीपन रूप मे चित्रित किया है । काव्य की भाषा सर्वत्र ही पात्रानुसार है । कवि ने इस ग्रंथ में रासक शैली, चित्रात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली और नाटकीय शैली का प्रयोग किया है । इसकी भाषा पिंगल है । प्रारम्भ में यह ग्रंथ प्रामाणिक माना जाता था, पर अब अधिकांश विद्वान भाषा के आधार पर इसे अप्रामाणिक मानते हैं ।

9:32 AM

Edit with WPS Office

बीसलदेव रासो

बीसलदेव रासो नरपतिनाल्ह द्वारा लिखित एक गेय काव्य है । इस ग्रंथ में बीसलदेव और उनकी रानी राजमती की प्रणय-गाथा है । इसका रचनाकाल संवत् 1212 माना गया है। पर, कुछ विद्वानों ने इस ग्रंथ के रचनाकाल, रचयिता और चरित नायक आदि विषयों पर संदेह व्यक्त किया है । यह ग्रंथ चार खण्डों एवं 500 छन्दों में पूरा हुआ है । इसमें लोक-जीवन के आचार-विचार, संस्कार-विश्वास, शकुन-अपशकुन आदि का बड़े ही स्वाभाविक ढंग से चित्रण हुआ है । इसका काव्य-पक्ष बड़ा ही प्रौढ़ है । रति की भावना पर आधारित वियोग-शृंगार का सुन्दर वर्णन इस काव्य में हुआ है । यह विरह काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है । प्रेमाख्यानक काव्य होने के कारण इसमें जहाँ शृंगार रस का प्राधान्य है वहीं वीर रस का परिपाक तनिक भी नहीं हुआ है । इसकी भाषा अपभ्रंश और राजस्थानी है । इसमें गुजराती, अरबी और फारसी के भी शब्द मिलते हैं ।

परमाल रासो (आल्ह खण्ड)

परमाल रासो (आल्ह खण्ड) एक वीरगीति की रचना है । इसके रचयिता जगनिक हैं । उन्होंने इसमें महोबा के दो प्रसिद्ध वीरों 'आल्हा' और 'उदल' के वीर चरित्रों का वीरात्मक शैली में वर्णन किया है । इस ग्रंथ की कोई हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं है । सर्वप्रथम फरुखाबाद के कलक्टर चार्ल्स इलियट ने इसकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर इसके गीतों के कुछ अंशों का अंग्रेजी में अनुवाद कराया था । यह वीरगीत आज भी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान में स्थानीय भाषाओं में गायी जाती है । इसमें अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के साथ-साथ कथा का प्रवाह भी अत्यन्त सुन्दर ढंग से वर्णित किया गया है । इसने कितने ही सुप्त हृदयों में साहस, वीरता और शहादत का मंत्र फूँका है । यह जनसमूह की निधि है । किन्तु, खेद है कि यह अर्द्ध-प्रामाणिक रचना है । इसमें वर्णित कथा इस प्रकार है —

"राजा परमाल भीरु और आसक्त थे, किन्तु उनकी पत्नी 'मल्हना' एक वीर ललना थी । पृथ्वीराज महोवा पर लगातार आक्रमण कर रहे थे । इन आक्रमणों का सामना भीरु परमाल नहीं कर पा रहे थे । ऐसी स्थिति में उनकी पत्नी मल्हना ने परिस्थिति को नियंत्रित किया । उसके निर्देशन में 'ऊदल' ने पृथ्वीराज के छक्के छुड़ा दिए । उसने अपना बलिदान देकर बुन्देलखण्ड के गौरव की रक्षा की । इस युद्ध में अनेक वीर मारे गए । उनकी पत्नियाँ सती हो गईं । केवल 'आल्हा' और उनके पुत्र 'इन्दल' बच गए । वे युद्धोपरान्त गृह त्याग कर कजरीवन चले गए ।" इसी कथा को इस ग्रंथ में छन्दित किया गया है ।

खुमाण रासो

'खुमाण रासो' आदिकाल में दलपति विजय द्वारा रचित प्रथम काव्य माना जाता है । इस ग्रंथ की प्रामाणिकता संदिग्ध है । इसका मूल लेखक कौन है, यह अभी तक विवादास्पद है । इसमें मेवाड़ के रावल खुमाण का यशगान किया गया है । गाहा एवं छप्पय छन्दों में महाराणा प्रताप तक के बेतरतीब वृत्तान्त का वर्णन इसमें किया गया है । इसकी काव्यमयता पर विचार करने पर पता चलता है कि यह वीर रसात्मक काव्य है । इसमें समय-समय पर परिवर्तन

Edit with WPS Office

कीर्तिपताका

'कीर्तिपताका' विद्यापति द्वारा लिखित अवहट्ट कृति है। इसमें कवि ने महाराजा शिव सिंह की कीर्ति गायी है। ग्रंथ के आरम्भ में कवि ने अर्द्धनारीश्वर एवं गणेश की वन्दना की है, अपने काव्य की प्रशंसा की है, अर्जुन राय का यशगान किया है, शक्ति सिंह की शक्ति का परिचय दिया है और अन्त में तिरहुत के गौरव का वर्णन किया है। प्रार्थना और गौरव-गान के बाद कवि ने कृष्ण और उनके अवतार का वर्णन किया है। इसके बाद मूल कथा प्रारम्भ होती है। कवि ने इस गद्य-पद्य मिश्रित ग्रंथ में रति और उत्साह नामक दो प्रधान भावों को स्वीकार किया है। सेना के वर्णन, हथियारों के वर्णन और राजा के यश के गायन में ही कवि केन्द्रित हो गया है, जिससे काव्य का उत्साह सुन्दर रस का रूप धारण नहीं कर सका है। इसकी शैली इतिवृत्तात्मक तथा भाषा अवहट्ट है।

Edit with WPS Office